बीज-पत्र

आधुनिक भारतीय चिंतन : एक वैकल्पिक पाठ

(28, 29 और 30 जुलाई 2022)

देशिक (अभिलेख-अनुसंधान केंद्र) का आयोजन

साहित्य अध्ययन पीठ, डॉ. बी.आर. अम्बेडकर विश्वविद्यालय दिल्ली

औपनिवेशिक शासन के दूरगामी प्रभावों पर किये जाने वाले विमर्श में अक्सर इस पक्ष पर समुचित ध्यान नहीं दिया जाता है कि भारतीय उपमहाद्वीप पर एकाधिकार स्थापित करने के लिए ब्रिटिश सत्ता द्वारा केवल सैन्य अभियानों और दुरभिसंधियों का ही सहारा नहीं लिया गया था। निश्चय ही भारत में औपनिवेशिक आधिपत्य के इस आख्यान में जनमानस के वैचारिक नियंत्रण के साथ-साथ उसके सांस्कृतिक बोध को भीतर-बाहर से बदलने के लिए रचा गया एक नया पाठ भी शामिल था।

औपनिवेशिक शासन द्वारा रचित और प्रसारित यह पाठ भारतीय समाज को एक पिछड़े और साभ्यतिक मूल्यों से श्रीहीन हो चुके समाज के रूप में पेश करता था। जाति-व्यवस्था, महिलाओं की स्थिति, धार्मिक अंधविश्वास, कट्टरपंथ और व्यापक निरक्षरता जैसी विसंगतियों को उसके पिछड़ेपन के रूप में प्रस्तुत किया जाता था। इसके बरक्स प्रबोधन, आधुनिकीकरण, विकास और प्रगति की पश्चिमी मान्यताएँ एक मॉडल की तरह प्रचारित की जाती थीं। ज़ाहिर है कि इस पाठ का उद्देश्य यह सिद्ध करना था कि भारत के बरक्स ब्रिटेन एक सफल और विकसित सभ्यता का उदाहरण प्रस्तुत करता है। इस क्रम में गाहे-बगाहे, संकेतों और रूपकों के ज़रिये यह बात अनेकश: दोहराई जाती थी कि उपनिवेशवाद भारत की हर समस्या का 'राम बाण' इलाज है। वैचारिक उपनिवेशन की यह प्रक्रिया इतनी व्यापक और बहुमुखी थी कि भारतीय समाज का एक बड़ा बौद्धिक वर्ग आत्म-संदेह के साथ आत्म-घृणा और हीनता-बोध से ग्रस्त होता चला गया। यह दरअसल भारत के भू-भाग और उसके भौतिक संसाधनों के समानांतर उसके मानस को भी उपनिवेशित करने की राजनीति थी।

लेकिन, फिर उन्नीसवीं और बीसवीं सदी के दौरान भारतीय 'आत्म' के इस नियोजित अवमूल्यन के ख़िलाफ़ एक नयी चेतना का उदय हुआ। भारत के समाज और सार्वजनिक जीवन में ऐसे विचारकों का प्रादुर्भाव हुआ जिन्होंने राष्ट्रीय पुनर्निर्माण का मार्ग प्रशस्त किया और भारतीय आत्म की पुनर्कल्पना की प्रक्रिया में अग्रणी भूमिका अदा की। इस दौर के

भारतीय विचारकों का चिंतन न केवल तत्कालीन सामाजिक-आर्थिक दुर्गति का जायज़ा लेता था, बल्कि इच्छित बदलाव का मार्ग भी दिखाता था। उल्लेखनीय है कि कई मायनों में इन विचारकों द्वारा प्रस्तुत समाधान सिर्फ़ भारतीय संदर्भ तक ही सीमित नहीं थे। मसलन, विवेकानंद द्वारा प्रस्तुत पूर्व और पश्चिम के बीच सृजनात्मक आदान-प्रदान का विचार हो, या फिर गाँधी द्वारा प्रतिपादित सत्याग्रह का विचार हो, या भीमराव अम्बेडकर द्वारा बुद्ध धर्म के नये पाठ का सृजन हो, उनके केंद्र में संपूर्ण मानवता है। इसलिए यह कहना अतिशयोक्ति न होगी कि इस चिंतन का आलोक वैश्विक श्रोताओं/पाठकों तक जाता था।

भारत के पुनर्निर्माण और उसके आत्म के संधान में रत इस दौर के बहुत-से विद्वान भारत के समृद्ध इतिहास की स्पष्ट स्वीकारोक्ति के साथ विदेशी स्रोतों के प्रभाव का नकार नहीं करते। इनमें कतिपय विद्वानों के लेखन का अत्यंत महत्त्वपूर्ण पहलू यह है कि उन्होंने प्राचीन भारतीय ग्रंथों का अध्ययन करते हुए उनका एक ऐसा आधुनिक भाष्य रचा जो पूर्वसंचित ज्ञान की समकालीन परिप्रेक्ष्य में व्याख्या करता था। मिसाल के तौर पर विवेकानंद, राममोहन रॉय, गाँधी, रवींद्रनाथ और अरविंद के लेखन में वेदांत की अलग-अलग व्याख्याएँ सामने आईं। इसी तरह, बंकिम ने समाख्या दर्शन की एक नवीन व्याख्या प्रस्तुत की। अम्बेडकर ने भारतीय सामाजिक जीवन की विसंगतियों और विषमताओं को नये सिरे से समझने का एक ऐसा परिप्रेक्ष्य पेश किया जो चुनौतीपूर्ण था। ऐसे में, यह अचरज की बात लगती है कि इतनी विशिष्टताओं और व्यापक आयामों के बावजूद इन विचारकों के योगदान को हमेशा पश्चिमी अवधारणाओं, श्रेणियों और प्रत्ययों के मुहावरे में व्याख्यायित किया जाता रहा। पीढ़ी-दर-पीढ़ी यह माना जाता रहा कि भारतीय चिंतन का कायाकल्प करने में पश्चिम के ज्ञान की भूमिका ही निर्णायक रही है। कुल मिला कर स्थिति यह है कि हम अंग्रेज़ों के भारत में क़दम रखने से पहले की ज्ञान-परम्परा और आधुनिक चिंतन में उसकी निरंतरता व प्रासंगिकता को विस्मृत कर बैठे हैं। आधुनिक भारतीय चिंतन के विभिन्न घटकों— चाहे वे दार्शनिक, सांस्कृतिक या राजनीतक हों— पर चिंतन करने वाले विचारकों के अध्ययन पर पश्चिमी पद्धति और ज्ञानमीमांसा का वर्चस्व स्पष्ट दिखाई पड़ता है।

मिसाल के तौर पर आधुनिक भारतीय चिंतकों पर अमूमन दो तरह से विचार किया जाता रहा है। पहला, काल-क्रम के आधार पर चिंतकों के जीवन और विचारों का अध्ययन; और दूसरे, कुछ श्रेणियों के संबंध में भारतीय चिंतकों के विचारों की गतिशीलता और विविधता का अवलोकन। दोनों ही प्रकार के अध्ययनों में पश्चिमी ज्ञान-मीमांसा और उससे आबद्ध श्रेणियाँ ही केंद्र में रही हैं। हमारे अधिकतर अध्ययनों में यही प्रवृत्ति प्रमुख रही है कि 'भारतीय पुनर्जागरण' में उपरोक्त आधुनिक चिंतकों की क्या भूमिका रही है, और उन्होंने 'सामाजिक संविदा', 'राष्ट्रवाद', 'उदारतावाद', 'नारीवाद', 'सेकुरलवाद', 'व्यक्ति की स्वतंत्रता' और 'समुदाय' के संबंध में क्या विचार व्यक्त किए हैं। इन चिंतकों के अध्ययन में पश्चिमी उदारतावाद, मार्क्सवाद, नारीवाद या 'पब्लिक स्फ़ियर' जैसी अवधारणाओं से संबंधित अवधारणात्मक समझ का उपयोग किया जाता है, और इसी आधार पर इन चिंतकों के विचारों को कई बार 'प्रगतिशील' या 'यथास्थितिवादी' या 'प्रतिगामी' सिद्ध किया जाता रहा है। इस तरह, ज्ञानमीमांसा के स्तर पर हमारा मौजूदा राजनीतिक चिंतन पश्चिमी दृष्टिकोण का प्रतिबिंब ज़्यादा दिखाई देता है। संक्षेप में कहें तो अपने समाज और अपने यथार्थ की समझ बनाने और उसकी व्याख्या करने के लिए हम पश्चिम द्वारा थमाये गये बौद्धिक औजारों का ही प्रयोग करते रहे हैं।

ग़ौरतलब है कि पश्चिमी विश्वविद्यालयों में दीक्षित-प्रशिक्षित कई आधुनिक भारतीय चिंतकों का भारतीय विश्वविद्यालयों के शैक्षिक ढाँचे, पाठ्यक्रम, पठन-पाठन और शोध आदि पर गहरा असर रहा है। लेकिन इस प्रश्न पर कभी गहराई से विचार करने का प्रयास नहीं किया गया कि आखिर इन चिंतकों की चिंतन-पद्धति और तर्क-योजना में ऐसा क्या है जिसे मूल रूप

से भारतीय कहा जा सके? इस रवैये का नतीजा यह हुआ है कि हम थेरी गाथाओं में नारीवाद की, कौटिल्य में मैकियावली की या अशोक के शिलालेखों में सेकुलरिज़म की खोज करते रहे हैं। कहना न होगा कि आधुनिकता और पश्चिमी ज्ञानमीमांसा ने हमारे जैसे उपनिवेशीकृत समाजों की मौलिकता पर ग्रहण लगा दिया है। भारतीय बौद्धिक अपने समाज के 'आउटसाइडर' आलोचक बन कर रह गए हैं। भारतीय इतिहास, परम्परा, समाज और संबंधों को समझने के लिए केवल पश्चिमी सामाजिक-राजनीतिक सिद्धांतों तथा श्रेणियों का ही उपयोग करना कहाँ तक जायज़ है? क्या हम भारतीय ज्ञान और ज्ञानमीमांसा की खोज के उद्यम से बचते नहीं रहे हैं? आखिर, भारतीय चिंतकों के लेखन में इसके स्रोत कहाँ खोजे जा सकते हैं? इस संदर्भ में इस बात पर भी विचार करने की आवश्यकता है कि मध्ययुगीन भारत के लेखन में उत्तर-औपनिवेशिक परिस्थितियों के लिए प्रासंगिक तत्त्वों की किस प्रकार शिनाख्त की जा सकती है? हमें इस बात की जाँच करने की ज़रूरत है कि जिसे हम भारतीय चिंतन, विशेष रूप से आधुनिक भारतीय चिंतन कहते हैं, उसका भारतीय वैशिष्ट्य दरअसल है क्या?

ज़ाहिर है कि इस संबंध में हमें सबसे पहले कुछ असहज सवालों की पड़ताल करनी होगी। मसलन, क्या भारतीय प्रबोधन पर विचार करने का कोई वैकल्पिक तरीका हो सकता है? या, क्या पुनर्जागरण और प्रबोधन जैसे युरोपीय प्रकरणों के आईने में भारतीय चिंतन में हुए नवाचारों को देखा जाना चाहिए? क्या आधुनिक भारतीय चिंतक भारतीय धर्म और संस्कृति के विविध गूढ़ आयामों का इस्तेमाल करते हुए कुछ ऐसी श्रेणियों या अन्तर्दृष्टियों का विकास कर पाए हैं, जिन्हें विशिष्ट रूप से भारतीय श्रेणी/अंतर्दृष्टि की संज्ञा दी जा सके?

तीन दिनों की यह कार्यशाला भारतीय बौद्धिकता के समक्ष खड़ी कुछ ऐसी ही चुनौतियों से सरोकार रखती है। इसके अंतर्गत हम आधुनिक भारत के कुछ प्रमुख मनीषियों के वैचारिक अवदान से संवाद करते हुए यह समझने का प्रयास करेंगे कि उनका राजनीतिक चिंतन पश्चिम की सामाजिक सैद्धांतिकी को किस प्रकार प्रश्नांकित करता है, तथा ज्ञान-रचना पर क़ाबिज औपनिवेशिक संरचनाओं का किस तरह प्रत्याख्यान करता है। इस प्रक्रिया में हमारी एक जिज्ञासा यह भी होगी कि क्या इस राजनीतिक चिंतन में कोई विशिष्ट 'भारतीय' तत्त्व भी रेखांकित किया जा सकता है?

—कमल नयन चौबे, और नरेश गोस्वामी

सत्र-विभाजन

<u>पहला दिन (28 जुलाई)</u>

आरम्भिक सत्र, सुबह 10.30–11.55 बजे तक
स्वागत : डॉ. नितिन मलिक (कुलसचिव, अम्बेडकर विश्वविद्यालय)
उद्घाटन : प्रोफ़ेसर अनु सिंह लाठर (कुलपति, अम्बेडकर विश्वविद्यालय)
संक्षिप्त प्रस्तावना : अभय कुमार दुबे
'पश्चिमी विचार-श्रेणियाँ और हमारा संकट'
प्रमुख वक्ता : नंद किशोर आचार्य
'आधुनिक भारतीय चिंतन का वैशिष्ट्य'
धन्यवाद-ज्ञापन : प्रोफ़सर सत्यकेतु सांकृत (अधिष्ठाता, साहित्य अध्ययन पीठ)

चाय और जलपान (11.55 से 12.25)

(एक प्रस्तुति अधिकतम बीस मिनट की, अध्यक्ष द्वारा बहस के मुद्दों को खोलने के लिए दस मिनट, फिर चालीस मिनट की चर्चा जिसमें प्रस्तोताओं के लिए भी संक्षेप में कुछ कहने का समय)

पहला सत्र (12.25 से 02.35)

हमारे 'ज्ञानोदय' और 'हमारे नवजागरण'
अध्यक्षता : अंबिका दत्त शर्मा
प्रस्तुतियाँ-
हिमांशु रॉय : प्राक्-औपनिवेशिक ज्ञान और परम्परा
विश्वनाथ मिश्र : भारतीय ज्ञानोदय का वैचारिक संकट
अविनाश झा : पश्चिमी ज्ञानोदय के स्थानांतरण की समस्या

भोजन (02.35-03.35)

दूसरा सत्र (03.35 से 06.00)

वि-औपिनवेशीकृत संकल्पनाएँ
अध्यक्षता : सतीश देशपांडे
प्रस्तुतियाँ-
सुधीर चंद्र : गाँधी
शैल मायाराम : मुकुंद लाठ
अंबिका दत्त शर्मा : यशदेव शल्य
अवधेश प्रधान : वासुदेव शरण अग्रवाल

दूसरा दिन (29 जुलाई)

पहला सत्र (9.30-11.30)
प्रोफ़ेसर गणेश देवी का व्याख्यान (तीस मिनट) / 'किसका वि-उपनिवेशीकरण : मानस का, समाज या ज्ञान का?'
अध्यक्षता : आदित्य निगम
(आधे घंटे की चर्चा)

चाय (11.30 से 11.45)

दूसरा सत्र (11.45 -01.55)

भारतीय परम्परा की समीक्षा
अध्यक्षता : हिमांशु राय
प्रस्तुतियाँ-
हरीश वानखेड़े : भीमराव आम्बेडकर
सागर तिवारी : जयपाल सिंह मुंडा
आनंद सिंह : धर्मपाल
सुमेल सिंह सिद्धू : जसवंत सिंह कंवल

भोजन (1.55-02.55)

तीसरा सत्र (02.55-5.15)

भारत की खोज : भू-भाग और वैचारिकी
अध्यक्षता : सतीश देशपांडे
प्रस्तुतियाँ-
मणीन्द्र नाथ ठाकुर : भारतीय वैचारिकी और ज्ञान का स्वराज
राजा राम भादू : भारतीय चिंतन और बहुसंस्कृतिवाद
नाज़िमा परवीन : आधुनिक भारतीय चिंतन में भू-भाग की अवधारणा

तीसरा दिन (30 जुलाई)

पहला सत्र (9.30-11.00)

मुस्लिम चिंतन
अध्यक्षता : राजाराम भादू
प्रस्तुतियाँ-
हिलाल अहमद : पसमांदा चिंतन (शहाबुद्दीन/हमीद दलवई/अली अनवर)
ज़किया सोमन : मुस्लिम स्त्रियाँ (सुधार की आवाज़ें)

चाय (11.00 से 11.15)

दूसरा सत्र (11.15 से 12.45)

हिंदू चिंतन और आधुनिकता : विवेकानन्द और दयानंद
अध्यक्षता : नीलंजन मुखोपाध्याय
प्रस्तुतियाँ-
निशांत कुमार : विवेकानन्द
प्रणव गुप्ता : दयानंद सरस्वती

भोजन (12.45-01.45)

तीसरा सत्र (01.45 -03.15)

हिंदुत्व के विभिन्न संस्करण
अध्यक्षता : शैल मायाराम
प्रस्तुतियाँ-
नीलंजन मुखोपाध्याय : विनायक दामोदर सावरकर
अनिल दत्त मिश्रा : दीन दयाल उपाध्याय

चाय (03.15 से 03.30)

समापन-चर्चा (03.30-05.30)

ज्ञान के वि-औपनिवेशीकरण का प्रश्न
अध्यक्षता : मणीन्द्र ठाकुर
सहभागी-
आदित्य निगम
सतीश देशपाण्डे
बलराम शुक्ल
अम्बिकादत्त शर्मा

धन्यवाद-ज्ञापन— कमल नयन चौबे और नरेश गोस्वामी